वर्षम् - ०२ अङ्कः - ०२ शोधज्योतिः
जनवरी-दिसम्बर, २०२० ISSN-2350-0700

संस्कृत वाङ्मय में प्रहेलिका शैली पर एक विमर्श

प्रो. मयूरी ए. भाटीया[१]

मनुष्य को आह्लाद का अनुभव करानेवाले तत्वों में से एक ऐहिक तत्व काव्य भी है। काव्यसर्जक की प्रतिभा शक्ति का हि परम उत्कर्ष है कि स्वाभावोक्ति में भी रसानुभूति का आह्लाद अनुभव होता है और अतिशयोक्ति में अतिशयता का ज्ञान होते हुए भी उसी आह्लाद आनंद की अस्खलित प्राप्ति कर सकता है। इस लक्ष्य सिद्धि की अभिव्यंजना में सर्जक कवि की वाणी आनंद प्रसविनी हो जाती है। शैली की स्वरता एवं कल्पन शृखंला की जटिलता का संयोग काव्य रहस्य को जन्म देता है। जो शाब्दिक चमत्कृति का मस्तिष्क कंदरा में उद्घाटन कराता है ऐसी सर्जकता का अभिधेय प्रहेलिका है। सदीओं के परिवर्तन में कई साहित्यिक परिभाषा समास एवं विस्तरण के झपेट में आई परन्तु क्षेत्र एवं काल की क्षितिजें आज पर्यन्त इस प्रहेलिका साहित्य को मर्यादित कर सकने में असमर्थ रही है। प्रहेलिका ऐसी एक विशेष प्रकार की रचना है जिसमें एक उत्तरापेक्षी प्रश्न होता है या किसी श्लेष अथवा अर्थान्तर की व्यञ्जना होती है जो परोक्ष, गूढ, वक्र आदि से अभिव्यंजित की जाती है। प्रहेलिका शब्द कैसे निष्पन्न होता है? प्रहेलिका शब्द की व्युत्पत्ति प्र + हिल (भावकरण,तुं.) + इन + कन् (अनुकम्पायाम्) + टाप्द्वारानिष्पन्नहोती है।[२] इनके द्वारा जो भाव प्रगट होते हैं वह "व्यामोहन" अर्थात् उल्झन में डालना या चक्करमें डालना है। प्रहेलिका के पर्याय शब्द ऐतरेयब्राह्मण तथा गोपथब्राह्मणमें प्राप्त होते हैं। इन दोनों ब्राह्मणोंकी व्याख्याओंमें उसका अर्थ स्पष्ट होता है। ऐतरेयब्राह्मणमें प्राप्त होते उल्लेख अनुसार प्रवल्हिकाःशंसति। प्रवल्हाकाभिर्वैदेवाअसुरान्प्रवल्हयाथैनानत्यायन्। तथैवैतद्यजमानाः प्रवल्हिकाभिरेवाप्रियंभ्रातृव्यंप्रवल्हयाथैनमतियन्ति। सायणभाष्य - "विततौकिरणौद्वौ" (अथर्ववेद २०.१.३३) इत्याद्याः षडनुष्टुभः प्रवल्हिकाऽऽख्याः। बृहदेवता १.५७: विततााऽऽदिः प्रवल्हिका।

---

[१] संस्कृत विभाग, भाषासाहित्यभवन, गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदावाद

[२] अमरकोष १.६.२ : प्रवल्हिका प्रहेलिका। रामाश्रमी : प्रहेलयति अभिप्रायं सूचयति अभिप्रायं सूचयति। 'हिल भावकरणे' तुदादि, प. सेट्) उणादि सूत्र ४.११८ : सर्वधातुभ्य इन। अष्टा, ५.३.७६ : अनुकम्पायाम् । यह शब्द कन् प्रत्यय बिनाभी प्राप्त होता है जैसे कि - प्रहेलि।

गोपथब्राह्मण उत्तर भाग ६.१३ : अथप्रवल्हिकाः पूर्वशस्त्वा' वितततौकिरणौद्वौ.....' (अथर्व २०.१३३) इति..... प्रहल्हिकामिर्हवैदेवाअसुराणांरसाम्प्रववृहुः। तद्यथाऽऽभिर्हवैदेवाअसुराणांरसांप्रववृहुः तस्मात्प्रवल्हिकाः। तत्प्रवल्हिकानांप्रवल्हिकात्वम्। प्रहेलिका की परिभाषा विदग्धमुखमंडन में इस प्रकार प्राप्त होती है कि -

व्यक्तिकृत्य कमप्यर्थं स्वरूपार्थस्य गोपनात्।
यत्र बाह्यान्तरावर्थौ कथ्येते ताः प्रहेलिका।। (६०/४/१)

कवियों को प्रहेलिका जैसी प्रश्नार्थ और गूढार्थ रचनाओं में गति कराने वाले प्रयोजन संभवतः विस्मय उत्पन्न करना, कुतूहल जगाना, रहस्यात्मक अभिव्यंजना,दार्शनिक अनुभूति की गूढार्थता का प्राकट्य, काव्य कला में पाण्डित्य या विदग्ध कुशलता का प्रदर्शन या अर्थ गोपन के साध्य कारण में चमत्कृतिपूर्ण काव्य रुप कार्यं का साधन स्वरूप में उपयोग आदि उद्देश पार्श्व भूमिका में है।क्योंकि दृश्य हो या श्रव्य हो, काव्य भावक के मन को तभी प्रभावित करेगा जब उसमें वाग्वैदग्ध्य या वाग् कलात्मकता आनंददायक हो - मनभावन हो। प्रहेलिका शैली के रसास्वादन के लिए विशेष ज्ञान और मनोयोग की आवश्यकता होती है, इतना ही नहीं पर्याप्त बौद्धिक व्यायाम की भी क्षमता अपेक्षित रहती है। प्रहेलिका का स्पष्ट स्वरूप संभवतः महाभारत के उत्तरी संस्करण की ग्रन्थग्रन्थियों में उपलब्ध है,सौति का महाभारत १/१/८७ में कथन है कि - ग्रंथग्रंथि तदा चक्रे मुनिर्गूढं कुतूहलात्। अर्थात् ग्रंथग्रंथियां वे गूढ श्लोक है जिन्हें महर्षि व्यास ने विशेष प्रयोजन से रचा था। सर्जन के लिये अपेक्षित चिंतनशीलता के इच्छुक व्यासजी ने अविलंबित लिपिक गणेशजी को विलंबित करने हेतु महाभारत के मध्य मध्य आठ सहस्र आठ सौ जितने गूढ श्लोकों की रचना की। गणेशजी गूढार्थ को समझते तब तक व्यासजी नये श्लोक की रचना कर देते थे। उदाहरण के रूप में एक श्लोक प्रस्तुत है - इस श्लोक में अनेकार्थवाची एक 'गो शब्द की भिन्न-भिन्न अर्थो में आवृति करके काव्य रचना की गई है-

गोकर्णः सुमुखीकृतेन इषुणा गोपुत्रसंप्रेषिता
गोशब्दात्मजभूषणं सुविहितं सुव्यक्तगोषु प्रभम्।
दृष्ट्वा गोगतकं जहार मुकुटं गोशब्दगोपूरि वै
गोकर्णसनमर्दयच्च न यथा वा प्राप्य मृत्योर्विशम्।।

यह श्लोक महाभारत के कर्णपर्व से लिया गया है जिसमें कहा गया है कि कर्ण ने अपना सर्प रूपी बाण अर्जुन पर छोड़ा किन्तु उसने उसके मुकुट को तो काट दिया पर अर्जुन बच गया। सर्जक - लिपिक की सहकारिता ने विश्व को अनमोल ग्रंथ रत्न के साथ साथ ऐसी उत्तम प्रहेलिका साहित्य की भी सृष्टि उद्घाटित की।

प्रहेलिका का प्रथम मूर्त रूप चाहे महाभारत में मिलता हो पर इसका बीज अवश्य ही संहिताओं में ही प्राप्त होते है, जहां अचेतन और तिर्यग्योनि जीवों में भी वाणी की कल्पना कर मानवोचित भाव और विचार प्रकट किए गए हैं। यह एक रूप से काव्यालंकार है। इसमें 'एक शब्द के अनेक अर्थ' का द्योतक श्लेष भी मूलभूत है। इसी के द्वारा बहुत से अलंकार संभव हो पायें है। इस प्रकार के भावाभिव्यक्तीकरण को ही सामान्य रूप से वक्रोत्ति समझ सकते हैं। 'वक्रोक्ति: काव्यजीवितम्', 'रीतिरात्मा काव्यस्य', 'काव्यस्यात्मा ध्वनिः' आदि से काव्यशास्त्रियों के भिन्न-भिन्न वादों का प्रतिपादन संभावित हैं, फिर भी निर्देश वास्तव में एक ही बात की ओर जाते हैं, कि काव्य में चमत्कार होता है जो सामान्य वाणीकी अभिव्यक्ति में नहीं रहता। इसी चमत्कृति का प्रप्रथम स्वरूप प्रहेलिका के रूप में वेदो में अनेक स्थान पर प्राप्त होतें है। वेदो में विषय प्रतिपादन की अनेक शैलियाँ प्रयुक्त हुई है। उन्हीं में इतिहासात्मक, संवादात्मक तथा आख्यानात्मक शैलिर्यां भी है। इतिहासात्मक शैली वह होती है जिसमें कल्पित नाम होते है, जिनके वर्णन के अनुरूप कुछ योगार्थ होता है और क्रियापद भूतकाल का वाचक होता है, जिससे इतिहास जैसा प्रतीत होता है। संवादात्मक शैली में कल्पित संवाद होता है जिसमें दो या अधिक पात्र होते हैं। आख्यानात्मक शैली में कल्पित कथानक होते हैं। ये तीनों शैलिर्यां शिक्षा देने के लिए प्रयुक्त की जाती है। इन में से संवादात्मक शैली अंतर्गत प्रहेलिका शैली विकसित हुई है। वेद काव्यमय है अतः स्वाभाविक रूप से काव्यात्मक शैली देखी जा सकती है। वैसे भी सभी विद्याओं का मूल ग्रन्थ वेद ही है अतः लौकिक काव्यों की शैली का उपजीव्य भी वेद ही है। यास्काचार्य ने निरुक्त में दो दृष्टियों से शैली का चिंतन किया है। यास्काचार्य ने अपने निरुक्त में दो दृष्टियों से शैली-विचार किया है प्रथम शब्दयोजना या वाक्ययोजना की दृष्टि से, द्वितीय प्रतिपाद्य अर्थ की दृष्टि से। प्रथम के अनुसार ऋचाएँ तीन प्रकार की कही हैं, परोक्षकृत, प्रत्यक्षकृत तथा आध्यात्मिक। इन तीनों प्रकार की ऋचाओं का विवेचन करके निरुक्तका कहते हैं कि वेदों में परोक्षकृत तथा प्रत्यक्षकृत मन्त्र तो बहुत है किन्तु आध्यात्मिक लक्षण वाले मन्त्र अत्यल्प दृष्टिगोचर होते हैं

प्रतिपाद्य अर्थ की दृष्टि से यास्क ने आठ शैलियाँ निर्धारित = हैं, जिनका यास्काचार्यने निरुक्त ७.३ में उल्लेख किया है वे इस प्रकार है। १. स्तुति - यथा इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम्।[१], २. आशीः - सुचक्षा अहमक्षाभ्यां भूयासम्।[२], ३. शपथ - अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि।[३], ४. अभिशाप - अधा स वीरैर्दशभिर्वियूया।[४], ५. भावचिख्यासा - न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि।[५], ६. परिवेदना - सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्।[६], ७. निन्दा - केवलाघो भवति केवलादी।[७], ८. प्रशंसा - भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म्।[८]

शौनक ने भी बृहद् देवता में शैली के संदर्भ में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए ३६ प्रकार की शैली वेदमंत्रो में दर्शाई है।[९] जिसमें से एक प्रहेलिका से सम्बद्ध है जिसे प्रवहलिका कहा गया है। वह इस प्रकार है - स्तुति, प्रशंसा, निन्दा, संशय, परिदेवना, स्पृहा, आशीः कत्थना, याच्ञा, प्रश्न, प्रैष, प्रवहलिका, नियोग, अनुयोग, क्ष्वाघा, विलपित, आचिख्यासा, संलाप, आख्यान, आहनस्या, नमस्कार, प्रतिराध, संकल्प, प्रलाप, प्रतिवाक्य, प्रतिषेध, उपदेश, प्रमाद, अपह्नवा, उपप्रैष, संज्वर, विस्मय, आक्रोश, अभिष्टव, क्षेप तथा शाप।

ब्रह्माण्ड पुराण में मंत्रो के ९ भेद इस प्रकार कहे गये है कि - स्तुति, निन्दा, प्रशंसा, आक्रोश, तोष, प्रश्न, अनुज्ञा आख्यान एवं आशास्ति।[१०] अल्प परिवर्तन के साथ विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी इन्हीं शैलीओं कै निरुपण देखा जा सकता है।[११]

स्तुतिर्निन्दा प्रशंसा चाक्रोशः प्रैष्य एव च।
प्रश्नानुज्ञास्तथाख्यानमाशास्तिविषया मताः।

---

[१] ऋ. १.३२.२९

[२] पा. गृ. सूत्र १.९.२५

[३] ऋ. ७.१०४.१५

[४] ऋ. ७.१०४.१५

[५] ऋ. १०.१२९.२

[६] ऋ. १०.९५.९४

[७] ऋ. १०.११७.६

[८] ऋ. १०.१०७.१०

[९] बृ.दे.,शौनक, १.३४-३९

[१०] ब्रह्माण्ड पुराण १/३३/८२-८३

[११] विष्णुधर्मोत्तरपुराण ३/१/१०-११

ऋग्वेद भाष्य के उपोदघात में सायणाचार्यने कुछ नामभेद के साथ शैली के 9 ही भेद माने है। जो इस प्रकार है - अनुष्ठानस्मारक, स्तुति, त्वान्त, आमन्त्रण, प्रैष, विचार, परिवेदन, प्रश्न, उत्तर।

तदन्तरगत प्रश्नोत्तर शैली के मन्त्र अस्यवामीय सूक्त में - पृच्छामि त्वां परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः..... आदि में मिलते है।[१] प्रहेलिका शैली का प्रसिद्ध मन्त्र "चत्वारिश्रृङ्गा" उदाहरण रूप में प्रस्तुत है। यहाँ एक ऐसे वृषभ का कथन है जिसके चार सींग, तीन पाँव, दो शिर तथा सात हाथ है। प्रत्यक्ष रुप से बैल का वर्णन प्रस्तुत होते हुए दीखता है परन्तु अन्योकित अलंकार द्वारा इसे अन्य अर्थो में प्रस्तुत होते हुए देख सकते है जिसे प्रहेलिका माध्यम से समझा जा सकता है। जैसे कि -

चत्वारि श्रृङ्गा त्रयोऽअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आविवेष।।[२]

इस वृषभ के चार श्रृङ्ग, तीन पाद, दो शिर और सात हाथ हैं। तीन ओर से बंधा हुआ यह गरज रहा है। यह महान देवता मर्त्यों में प्रविष्ट हो गया है। प्रत्यक्षतः तो यह निरर्थक और असंगत कथन प्रतीत होता है पर मनोव्यायाम से विचार करने पर इसमें एक निश्चित अर्थ की प्रतीति होने लगती है। सायण ने इस मन्त्र के अनेक अर्थ किये हैं। सर्वप्रथम उसने इसे यज्ञाग्नि का वर्णन बताया है। इस अर्थ में चार सींग चारों वेद (ऋक्, यजुष्, सामन् और अथर्व) हैं अथवा चार पुरोहित हैं (होता, उद्गाता, ऋत्विक और अध्वर्यु)। तीन पैर तीन सवन हैं (प्रातः, सायं और मध्याह्न); दो सिर हैं ब्रह्मौदन और प्रवर्ग्य, और सात हाथ हैं सात वैदिक छन्द। यह देवता यज्ञाग्नि है जो त्रिधाबद्ध है-मंत्र, ब्राह्मण और कल्प द्वारा। इसे वृषभ कहा गया है क्योंकि यह यज्ञ के फल की वर्षा करता है और सामन् और यजु के गायन से उत्पन्न ध्वनि में गर्जन करता है।

आचार्य यास्क ने इसका यज्ञपरक अर्थ किया है तदनुसार इस बैस्ल के चार वेद चार सींग हैं, तीन लोक तीन पैर है, सृष्टि और प्रलय दो शिर है, सात छन्द सात हाथ है, वेदत्रय से त्रिधा बद्धो यह यज्ञ रूपी वृषभ तीनों लोको में गर्जना करता है तथा यह मर्त्यों में प्रविष्ट हुआ है।

इसी प्रहेलिका शैली का अर्थघटन करते हुए अन्य व्याख्याकारों ने होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा को यज्ञरुपी बैल के सींग, प्रातः माध्यन्दिन तथा सायंसवन को त्रिपाद, यजमान तथा यजमान पत्नी को दो शिर तथा भूः भुव, स्वः, महः, जनः, तपः तथा सत्य - सप्त लोकों को सात हाथ कहा। इस

---

[१] ऋ. १/१६१४/३४, ३५

[२] ऋ. ४/५८/३

यज्ञ रूपी वृषभ का वेदत्रयी रुपी रस्सी या खूंटे पर बंधा बताया गया है। महर्षि पतंजलि ने व्याकरण शास्त्रीय अर्थघटन करते हुए इस मंत्र की व्याख्या की है कि नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात को इस वृषभ के चार सींग दर्शायें हैं। इसके तीन पाद भूत, भविष्य एवं वर्तमान है। इसके दो शिर नित्य तथा अनित्यरूप हैं। इसके सात हाथ अर्थात् सात विभक्तियाँ है। यह तीन स्थानों हृदय, कण्ठ और शिर से बंधा हुआ है।[१] यजुर्वेदभाष्य में इस मन्त्र की उवट ने दो व्याख्याएँ दी हैं, एक यज्ञपरक और दूसरी शब्द - ग्रामपरक। महीधरभाष्य में तीन व्याख्याएँ हैं, दो यज्ञपरक और एक शब्द-ग्रामपरक। हैं, दो यज्ञपरक और एक शब्द-ग्रामपरक। यज्ञपरक एक व्याख्या निरुक्त का ही अनुसरण करती है। दूसरी शब्दग्रामपरक व्याख्या प्राय: पतञ्जलि की व्याख्या के समान है। केवल इतना अन्तर है कि पतञ्जलि ने तीन कालों को तीन पैर माना है, किन्तु यहाँ उनके साथ विकल्प-रूप में प्रथम, मध्यम तथा उत्तम पुरुष को भी तीन पैर कहा है। दो सिर उवट ने नाम और आख्यात तथा महीधर ने कार्यता - हैं, जबकि पतञ्जलि ने सुप्-तिङ् माने हैं। जिन तीन स्थानों में वह व्यङ्ग्यता कहे शब्द-रूप वृषभ बद्ध है, वे पतञ्जलि ने उरस्, कण्ठ एवं सिर कहे हैं,तु उवट तथा महीधर ने एकवचन, द्विवचन और बहुवचन माने है। इन व्याख्याओं के अतिरिक्त यह भी संभव है कि शरीर में यह वृषभ प्राण हो सकता हैं। अन्तःकरण - चतुष्टय इसके चार सींग हैं। व्यान, उदान, समान पैर हैं। प्राण, अपान दो सिर हैं। पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, मन एवं बुद्धि ये सात हाथ हैं। उत्तमांग, मध्यांग तथा निम्नांग इन तीनों स्थानों में हुआ वह श्वासोच्छास द्वारा अथवा वाणी द्वारा शब्द कर रहा है।

ऐसे उदाहरण से निर्दिष्ट होता है कि इस प्रकार प्रहेलिओं का अर्थघटन ज्ञान की विभिन्न सीमाओं को अनेकशः विस्तरित करता है। किसी भी शास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ करने से पूर्व उसकी भाषागत तथा अर्थगत शैलियों का परिज्ञान आवश्यक होता है। अन्यथा उस शास्त्र को न हम पूर्णतः समझ सकते हैं, न ही उसका यथार्थ मूल्यांकन ही कर पातें हैं। जैसे कि प्रत्याहार-प्रक्रिया या परिभाषा के पूर्व ज्ञान बिना पाणिनि की अष्टाध्यायी का अध्ययन संभव नहीं है उसी प्रकार वेदो के हृदगत संदर्भ को समझने के लिए एवं उनका गोपित ज्ञान प्राप्त करने के लिए, उनकी शैलीका ज्ञान परम आवश्यक है। वेद की प्रहेलिका शैली को जाने बिना प्रहेलिका वाले स्थल असंबद्धार्थभिधायी प्रलाप जैसे प्रतीत होते है। इस शैली का रहस्य न समझने के कारण ही वेदों के अनेक प्रकरणों का आशय समझने में विद्वान भाष्यकार

---

[१] ऋ. ४/५८/३ - पातञ्जल महाभाष्य प्रथम आह्निक

भी असफल रहे है। किसी तथ्य को गुप्त या रहस्यमय रुप में प्रकट करना वेदों की विशिष्टता रही है। ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा है कि देवता परोक्षप्रिय होते है।[१] प्रहेलिका भी परोक्षप्रधान या गुह्यार्थ होती है।[२] अतः प्रहेलिकात्मक शैली ने वेद में विशेष स्थान पाया है।

जिस प्रकार वैदिक अर्थघटन के लिये प्रहेलिका शैली का महत्व है ठीक वैसा ही महत्व लौकिक संस्कृत भाषा के काव्यार्थ कि अभिव्यंजित चमत्कृति की बोधनप्रक्रिया में प्रहेलिका शैली का भी है। संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने भी प्रहेलिका पर पर्याप्त विचार किया है तथा समय समय पर संस्कृत के कवि प्रहेलिकाएँ लिखते रहे हैं। आचार्य दण्डी ने प्रहेलिका का उपयोग बताते हुए कहा है कि-

क्रीडा-गोष्ठी-विनोदेषुतज्ज्ञैराकीर्णमन्त्रणे।
पर-व्यामोहनेचापिसोपयोगाःप्रहेलिकाः।।

क्रीडा-गोष्ठियों में मनोरंजन, जनाकीर्ण स्थान में परस्पर गुप्त भाषण तथा पर-व्यामोहन के लिए यह उपादेय होती है।[३] दण्डी ने प्रहेलिका का सामान्य लक्षण न देकर भेदों के लक्षणों में उसे स्पष्ट किया है कि खेलों, गोष्ठियों में मनोरंजन के अवसरों पर, भीड में वातचीत करने में और दूसरों को विशेषरूप में भुलावा देने में प्रहेलिकाएँ उनके जानकारों के द्वारा उपयोगी होती है।

आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में प्रहेलिकाओं का निरुपण तीन विभाग में किया है पहला प्रथम ३/९८ से १०४ तक के श्लोको में पन्द्रह शुद्ध प्रहेलिकाओं के लक्षण बताने के बाद इनके संङ्कर से निष्पन्न सङ्किर्ण प्रहेलिका नामक प्रकार को दर्शाया है। दूसरा पूर्वाचार्यसम्मत दोषयुक्त चौदह प्रहेलिकाओं का अभिधान न करने हेतु ३/१०६ एवं १०७ में दर्शाया है। और तीसरा ३/१०८ से १२२ तक पन्द्रह शुद्ध प्रहेलिकाओं के पंद्रह उदाहरण देकर १२३ में उद्धृत संकीर्ण प्रहेलिका में संकीर्ण पहेलियां बताकर इस उदाहरण को अन्य भेदों के संकर्य का उपलक्षक बताया है। सभी प्रहेलिकाओं में समान तत्त्व परव्यामोहन है, जो कहीं शब्द का स्वरूप समझ न आने से आता है, तो कहीं अर्थ की दुरुहता के कारण आता है। शब्द और अर्थ को दुरुह बनाने के प्रकार में भेद होने से ये प्रहेलिकायें एक दूसरे से भिन्न है। दण्डीने समागता, वाग्चिता, व्युत्क्रान्ता, प्रमुषिता, समानरुपा आदि प्रहेलिका के

---

[१] परोक्षप्रिया इव हि देवा भवन्ति प्रत्यक्षद्विषः। गो. ब्रा. २/२९

[२] व्यक्तीकृत्य कमप्यर्थं स्वरुपार्थस्य गोपनात्।
यत्र ब्राह्मान्तरावर्थी कथ्येते सा प्रहेलिका।। विदग्धमुखमण्डन।

[३] काव्यादर्श,दण्डी, ३.९७

सोलह भेदों का भी सोदाहरण निरुपण किया है।[१] दण्डी के अनुसार १६ प्रकार की प्रहेलिकाये पूर्व आचार्यों ने बताई है। यथा

एताः षोडश निर्दिष्टाः पूर्वाचार्यैः प्रहेलिकाः।
दृष्ट - प्रहेलिकारयान्यास्तैरधीतारचतुर्दशा। ३:१०६ ।

भोज ने सरस्वती कण्ठाभरण में प्रहेलिका के च्युताक्षर, दत्ताक्षर, च्युतदत्ताक्षर आदि छह भेद परिगणित किये है।[२] विश्वनाथ के अनुसार रसानुभूति में बाधक होने से प्रहेलिका अलंकार कोटि में नहीं आती, क्योंकि अलंकार तो रसोपकारक हुआ करते है, वह चित्र के ही अन्तर्गत होती है।[३] प्रहेलिका का उद्गम विकास देखें तो उसका आदिस्त्रोत वैदिक सहिताएँ ही है। पर उत्तरकालिन साहित्य में प्रहेलिका का जो शब्दचित्रात्म जटील स्वरूप च्युताक्षर, दत्ताक्षर आदि हो गया, वह वेदों के उपबृंहण प्रक्रिया का विकसित स्वरूप है।। अधिक से अधिक जो शब्दचित्रमय स्वरूप वेदों में प्राप्त होते हैं उनका एक उदाहरण निम्नरुप में देखे जा सकतें हैं।[४]

सृण्ये जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु।।

इस प्रकार के उदाहरण काव्यादर्श में दण्डी के "प्रमुषिता" नामक प्रहेलिका भेद अन्तर्गत हो सकते हैं।[५]

कुछ प्रहेलियाँ ऐसी है जिसमें कोई असम्भव बात कही गयी है, जिसकी संगति लगानी अभिष्ट होती है। जैसे पुत्र का माता को उत्पन्न करना, आकाश में बैलों का स्थित होना, सिर से दूध देनेवाली तथा पैरों से पानी पीने वाली गौओं का वर्णन, बैल का घोंसला होना तथा उससे शिशु उत्पन्न होना, चार सींग, तीन पैर, दो सिर और सप्त हाथों का बैल होना आदि। जितना ही अधिक असम्भवित वर्णन प्रहेलिका में है उतनी ही चमत्कृति श्रेष्ठ है। कुछ प्रहेलियाँ श्लेषमूलक है। दण्डी ने जो भेद प्रदार्शित किये हैं, उनमें से अधिकांश वैदिक प्रहेलियाँ "वञ्चिता-वञ्चितान्यत्र रूढेन यत्र शब्देन वञ्चना तथा समानरुपा - समानरूपा गौणार्थारोपितैर्ग्रथिका पदैः।।" अत्रोद्याने मया दृष्टा वल्लरी पञ्चपल्लवा। पल्लवे पल्लवे

---

[१] काव्यादर्श , दण्डी, ३.९८ से १२४

[२] सरस्वतीकण्ठाभरण,भोजदेव, २.१३३

[३] साहित्यदर्पण,विश्वनाथ: १०-१३, रसस्य परिपन्थित्वान्नालवारः प्रहेलिका ।

[४] ऋग्वेद - १० : १०६.६

[५] काव्यादर्श, दण्डी, ३.१८.११३

ताम्रा यस्यां कूसुममंजरी।। के अन्तर्गत आती है। प्रहेलिकाओं के प्रत्यक्षदर्शी अर्थ एवं परोक्ष कूट अर्थ की गहेराई अर्थाभिव्यक्ति की विशिष्ट शैली का आकलीन है। अनेक वैदिक पहेलियों में वायस, बृषभ, सुपर्ण, गौ आदि शब्द प्रयोग प्राप्त होते हैं जिसका प्रचलित अर्थ कौआ, बैल, गरुड, गाय आदि है। प्रहेलिका को देखते ही प्रथम अर्थों की और ध्यान आकृष्ट होता है तदन्तर बुद्धि द्वारा अनुसंधानित अर्थ - सूर्य, प्राण, आत्मा, प्रत्यञ्चा आदि पर चमत्कृति पूर्ण संघान हो जाता है। उन अर्थों के साथ योगार्थ का भी अनुसंधान हो जाने से प्रहेलिका में चमत्कृति पैदा होती है।[१] वेदों की प्रहेलिका केवल दण्डी के दर्शाये हुए प्रयोजनों तक ही सिमित नहीं है अपितु इनसे रहस्यार्थ को समझने में बडी सहायता मिलती है। इनसे उपमानोपमेय भाव आदि ध्वनित होकर चमत्कारिक अर्थ की प्रतीति हो जाती है।[२] वैदिक प्रहेलिकाओं में एक यह भी विशेषता है कि उनके समाधान विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न भिन्न हो सकते हैं। इन प्रहेलिकाओं में आधिदैवत, आधिभूत, आध्यात्म, अधियज्ञ आदि अर्थो का दर्शन प्राचीन आचार्यों ने किया है। निरुक्त भी उसका ही एक सबल प्रमाण है। निरुक्त के परिशिष्ट में जो मन्त्र दिये गये है, उनमें अधिकांश प्रहेलिका ही है, जिनके यास्काचार्यने अधिदैवत तथा अध्यात्म दोनों रुप में समाधान दर्शाये है। कहीं कहीं तो अधिदैवत तथा अध्यात्म व्याख्यान के साथ वैयाकरण, याज्ञिक आदि अन्य पक्ष भी निरुक्तकार ने प्रस्तुत किये हैं।[३] सायणाचार्य ने भी अनेक प्रहेलियों को विविध पक्षों में व्याख्या की है। अस्यवामीय सूक्त - जो ऋग्वेदीय प्रहेलिकाओं का उत्तम उदाहरण है, उस पर सायणाचार्यने अधिकांश अधिदैवत चा अधियज्ञ दृष्टि से व्याख्या की है, परन्तु उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है किये सब प्रहेलिर्यां अध्यात्म में भी चरितार्थ हो सकती है। उन्हों ने अपने भाष्य में लिखा है कि "एवमुत्तरत्रापि अध्यात्मपरतया योजयितुं शक्यम्, तथापि स्वरसत्वाभावाद् ग्रन्धविस्तरभयाच्च न लिख्यते।[४] अतः वेदार्थघटन प्रक्रियामें प्रहेलिकात्मक शैली का विचार वेदव्याख्या की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। उतनी ही महत्वपूर्ण अभिव्यंजित गूढार्थ चमत्कृति के उद्घाटन में लौकिक संस्कृत में भी प्रहेलिका शैली का प्रतिपादन होता है।

---

[१] ऋ. १.१६४.५२

[२] यजु ३४.११

[३] निरुक्त,यास्कः, १३.९

[४] ऋ. सायण भाष्य । १/१६४/१